

कृषक आन्दोलन : उत्थान और समस्या

शालिनी गुप्ता*

किसान का सीधा सम्बन्ध भूमि से है। उसका जमीन उसका जीवन है। उसके जीने का आधार जमीन है खेती है। फसल है, जमीन से उत्पन्न होने वाली चीजें उसी आय का स्रोत है। इस स्रोत का ही जब दोहन होने लगे और किसानों का शोषण होने लगे तो क्रांति और आन्दोलन की चिंगारी कहीं अन्दर ही सुलगने लगती है। भूमिहीन किसानों एवं छोटे किसानों का शोषण विभिन्न युगों की सामन्ती और पूँजीवादी के तहत किया जाता है। प्रत्येक युग ने शोषण से अपने आधार तैयार किये।

किसानों ने अक्सर अपनी पहल करके ब्रिटिश राज का प्रतिरोध किया। बंगाल के उत्तरी जिलों में 1783 का रंगपुर विद्रोह ऐसे विरोध का एक आदर्श उदाहरण है। मालगुजारी की वसूली के आरम्भिक दिनों में मालगुजारी की भारी मांगे करके और अक्सर गैरकानूनी करों की वसूली करके मालगुजार और कम्पनी के अधिकारी किसानों का दमन करते थे। देवी सिंह या गंगा गोविन्द सिंह जैसे मालगुजार जिन्होंने रंगपुर और दीनाजपुर जिलों के गाँवों में आंतक का साम्राज्य फैला रखा था। किसानों ने पहले तो उद्धार की गुहार लगाते हुए कम्पनी की सरकार को एक प्रार्थना पत्र भेजा। लेकिन जब उनकी इंसफ की दुहाई अनसुनी कर दी गई तब उन्होंने अपने आपको संगठित किया, अपना एक नेता चुना, एक बड़ी फौज तैयार की, आदिम तीर-कमानों और तलवारों से खुद को लैस किया, स्थानीय कचहरी पर हमला किया, अनाज के गोदाम लूट और कैदियों को जबरन छोड़ा लिया। विद्रोहियों ने अपने आन्दोलन का खर्च उठाने के लिए कर वसूल किए। देवी सिंह की अपील पर वारेन हेस्टिंग्स के काल में कम्पनी की सरकार ने विद्रोह के दमन के लिए दस्ते भेजे। लेकिन उनके निर्मम दमन के बाद मालगुजारी ठेका की व्यवस्था में कुछ सुधार किए गए।

कृषक समाज एक सजातीय समाज नहीं है। इसमें भी सोपान है। एक ओर बड़े और मध्यम स्तर के किसान हैं जो बहुत बड़े कृषि योग्य क्षेत्र के मालिक हैं और दूसरी ओर कृषकों का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जिनके पास कृषि योग्य भूमि का बहुत थोड़ा भाग है। निम्न श्रेणी के कृषकों की समस्याएँ उच्च श्रेणी के कृषकों से ज्यादा गम्भीर हैं। छोटे और सीमान्त कृषकों तथा बटाईदारों को बड़े किसानों पर निर्भर रहना पड़ता है। बड़े किसानों का झगड़ा या असन्तोष सरकार के खिलाफ होता है वे चाहते हैं कि कृषि में जो निवेश काम में आते हैं उन पर कर का भार थोड़ा होना चाहिए और कृषि की जो उपज होती है उसका मूल्य अधिक मिलना चाहिये। निम्न वर्ग के किसानों का असन्तोष बड़े किसानों के साथ होता था। अंग्रेजी की पूँजीवादी नीतियों के विरुद्ध किसानों के अन्दर एक भट्ठी धधक रही थी। उनके अत्याचारों को सदैव खामोशी से बर्दाश्त नहीं किया गया बल्कि समय-समय पर अंग्रेज शासकों को इसका जबाब दिया गया। जिसमें सन्यासी विद्रोह (1736-1800) में हुआ विद्रोह बंगाल और बिहार में आरम्भ हुआ। अयोध्या सिंह इस विद्रोह के लिए लिखते हैं, "ईस्ट इंडिया कम्पनी के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने इस विद्रोह को सन्यासी विद्रोह नाम दिया था।"

इस विद्रोह में वे लोग शामिल थे जो भूख, गरीबी, बेरोजगारी और अंग्रेजों के अत्याचार से दुखी एवं आहत थे। इसमें पीड़ित सैनिक और भूमिहीन किसान भी थे। विलियम हन्टर ने लिखा है कि "ये जीवनयापन के शेष उपाय का सहारा लेने को बाध्य हुए थे। ये तथाकथित गृहत्यागी और सर्वत्यागी, सन्सासियों के रूप में पचास-पचास हजार के दल बांधकर पूरे देश में घूमा करते थे।" "सन्यासी धार्मिक भिक्षु" थे। इन्होंने मुख्यतः बंगाल और बिहार में घूम-घूम कर विद्रोह करने की प्रेरणा दी। अंग्रेजों को सबक सिखाने के लिए ये 'ईस्ट इंडिया कम्पनी की कोठियों को लूटते और उनसे कर वसूल करते' इन विद्रोहियों का सबसे पहला आक्रमण ढाका की ईस्ट इंडिया की कोठी पर हुआ।" वास्तव में संयासी विद्रोह ने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिये इस विद्रोह के प्रसिद्ध नेता थे मजनू शाह, मूसा शाह, भवानी पाठक, देवी चौधरानी आदि। 29 दिसम्बर 1786 को अंग्रेजों से युद्ध करते हुए मजनू शाह घायल हो गये और कुछ दिनों पश्चात् उन्होंने प्राण त्याग दिये। सन्यासी विद्रोह, किसान आन्दोलन और विद्रोह की एक ऐसी मशाल थी। जिसने अंग्रेजों और देशी जमींदारों के छक्के छुड़ा दिये।

1855-56 का संथाल हूल (विद्रोह) इस काल का सबसे प्रभावशाली आदिवासी आन्दोलन था। संथाल पूर्वी भारत के विभिन्न जिलों, जैसे कटक, ढालभूमि, मानभूमि, बड़ाभूमि, छोटानागपुर, पालामऊ (पलामू), हजारीबाग, मेदिनीपुर, बांकुड़ा और वीर भूमि में बिखरे हुए थे। अपने वतन से भगाए जाने पर इन्होंने राजमहल की पहाड़ियों के आस-पास का इलाका साफ किया और उसे दामने - कोह (पहाड़ का दामन) नाम दिया। आदिवासियों की जमीनें जब किराये पर गैर आदिवासी जमींदारों और सूदखोरों को उठा दी गयी, तो धीरे-धीरे बेहताशा की स्थिति

* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, दी0द0उपा0, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

में पहुंच गए बाहरी लोगों (संथालों की भाषा में डीकू) की इस पैठ ने उनकी जानी पहचानी दुनिया को एकदम नष्ट कर दिया और उनको अपने छीने हुए क्षेत्र को वापस पाने के लिए कार्यवाई पर मजबूत कर दिया।

30 जून 1855 की रात को मगनाडीही गांवों में संथालों को एकत्रित होने के लिए कहा गया। चार सौ गांवों के प्रतिनिधियों ने इसमें हिस्सा लिया। संथाल विद्रोह के मुख्य नेता थे, सिद्धू कानू, चांद और भैरव। संथालों की सभा में आक्रोश की ऐसी मशाल जली की उन्होंने घोषणा की कि अब संथाली किसी का भी अत्याचार सहन नहीं करेंगे इन्होंने अपनी मांगों को शासन के विभिन्न अधिकारियों के पास भेजी लेकिन मांगे अनसुनी कर दी गई थी।

जुलाई 1855 में, जब जमींदारों और सरकार ने उनकी चेतावनी को अनसुनी कर दी गई, तो तीर कमान से लैस कई हजार संथालों ने "अपने उत्पीड़कों अर्थात् जमींदारों, महाजनों और सरकार की नापाक तिकड़ी के खिलाफ" खुली बगावत शुरू कर दी यह बगावत तेजी से फैली तथा भागलपुर और राजमहल के बीच एक बड़े क्षेत्र में कम्पनी का शासन लगभग पूरी तरह समाप्त हो गया, जिससे सरकारी हलकों में बौखलाहट मच गई। जिसका परिणाम हुआ कि संथाल आबादी वाले क्षेत्र को संथाल परगना नाम से अलग प्रशासनिक इकाई बना दिया गया।

1783 में रंगपुर किसान विद्रोह हुआ था। इस विद्रोह में भी अन्य किसान आन्दोलन की ही तरह शोषण के बीज उपस्थित थे। अंग्रेजी शासकों का 6 लाख से अधिक रास्व प्राप्त नहीं होता था किन्तु देवी सिंह ने अंग्रेजों को प्रसन्न करने के लिए कहा कि वह प्रत्येक वर्ष 16 लाख रुपये ब्रिटिश सरकार को देगा। देवी सिंह के किसानों पर इतने अत्याचार बढ़ गये की अंग्रेजों को उसे उसके पद से हटाना पड़ा पुनः उसे दिनाजपुर, रंगपुर आदि का इजारा दे दिया गया। उसने अपने स्वभाव के अनुसार फिर छोटे जमींदार और किसानों का शोषण करना आरम्भ कर दिया। इस शोषण और अत्याचार से किसान उसके विद्रोही हो गये। दिनाजपुर में देवी सिंह के अत्याचार के विरुद्ध 1783 में किसानों ने शस्त्र उठा लिए। 1782 में सम्पूर्ण बंगाल में बगावत की लहर फैल रही थी। "जनवरी 1783 में सारे रंगपुर परगने में विद्रोह शुरू हुआ। विद्रोही किसानों ने रंगपुर के सभी इलाकों से देवी सिंह के लगान वसूल करने वालों को मार भगाया। देवी के बहुत से कर्मचारी मारे गये। लगान वसूल करने वाले नायब गुमास्ता और जमींदार भी पकड़-पकड़ कर मारे गये। नवाब के आह्वान पर कोच विहार और दिनाजपुर के किसान भी विद्रोही दल में शामिल हो गए, उन्होंने नायबों, गुमास्तों आदि को भगा दिया। यद्यपि की इस आन्दोलन को भी अन्य कृषक आन्दोलनों की असफलता का मुँह देखना पड़ा।

1860-61 में नील विद्रोह भी प्रमुख आन्दोलन था। भारत में नील नाम के एक पौधे की खेती की जाती थी वे किसान जो इस खेती से जुड़े थे उन्हें नील किसान कहा जाता था। अंग्रेजी सरकार ने 1833 में जमीन पर ईस्ट इंडिया कम्पनी की इजारेदारी को समाप्त कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज भारत में रह सकता है और यहाँ सम्पत्ति का मालिक बन सकता है इस अधिकार को पाते ही जमीनों को खरीदा गया और उस पर नील की खेती करायी गयी जिससे अत्यधिक लाभ प्राप्त हुआ। नील की खेती से किसानों को हानि होती थी वे किसी भी कीमत पर नील की खेती से मुक्त होना चाहते थे किन्तु वे हो नहीं पाते थे। उनसे एक तरफ जबरन खेती करायी जाती थी, दूसरी तरफ उन पर कर्ज का बोझ इतना अधिक था कि उन्हें विवशता में गुलामों की तरह खेती में जोता जाता था। लेआर्ड साहब ने पार्लियामेंट में यह वक्तव्य दिया कि "नीलहे असाहय किसानों की जमीन दखल कर रहे हैं, उनके घर द्वार ध्वंस कर रहे हैं, पेड़ काट कर एवं बगीचे के पौधे उखाड़ कर फेंके जा रहे हैं, जो बाधा देने का प्रयास करते हैं उनकी हत्या की जा रही है अथवा उनका हरण कर खुद तैयार किये गए जेल खाने में बन्द किया जा रहा है सम्पूर्ण देश में अराजकता का बाजार गर्म है। विद्रोह नदिया, जैसोर, बारासात, फरीदपुर और बंगाल के अनेक जिलों में फैल गया अनेक कोठियां जलायी गयी और लूटी गयी। इस विद्रोह से अंग्रेज सरकार कांप गयी। 27 अगस्त 1860 के एक कमीशन रिपोर्ट में स्पष्ट कहा गया कि अत्यधिक अत्याचार ही नील किसानों की अशान्ति का मूल कारण है। दुख इस बात का है कि इन अत्याचारों पर प्रतिबन्ध और नियन्त्रण करने के कोई कानून नहीं बनाया गया। बल्कि खूबसूरती से यह कह कर टाल दिया गया कि प्रजा को नील बोनो अथवा न बोनो का अधिकार है। उनका दमन और अत्याचार किसानों पर चलता रहा किसान मोर्चे पर डटे रहे अन्ततः उन्हें विजयश्री प्राप्त हुयी बंगाल में नील खेती बन्द करनी पड़ी।

पावना किसान आन्दोलन का आरम्भ शहजादपुर के गांव से प्रारम्भ होता है। शनैः शनैः यह पावना जिले की सीमाओं को लांघ कर अन्य जिलों में फैल गया विद्रोह का मुख्य केन्द्र स्थल पावना जिला था। जहाँ पहले नाटोर राज्य के सामन्तों का राज्य था। इस जिले पर लगान इतना बाकी रह गया था कि इसे नीलाम करना पड़ा एक जमींदार ने इसे खरीद लिया। जमींदार ने किसानों पर बेतहाशा लगान बढ़ा दी। उन्हें जमीन से बेदखल किया जाने लगा इतना ही नहीं इनसे मन चाहे रूप में अनेक प्रकार की गैर कानूनी रकमें भी जमींदार लेने लगे। किसानों की जमीने नाप के नये तरीकों से हड़पा जा रहा था। इस सम्बन्ध में सरकार ने 'रोड सेस कानून'

बनाया जिसके तहत किसानों को अपनी जमीन बतानी होती थी और किसानों से जो नियम विरुद्ध रकम झपटी जाती थी उसका भी ब्यौरा मांगा गया जमींदारों ने किसानों से मिलकर झूठे प्रमाण सरकार को दिये कि किसान स्वेच्छा से भूमि राजस्व जमींदार को देते हैं। इसके होते हुए भी कुछ किसानों ने साहस का परिचय दिया और असली लगान न्यायालय में जमा किया। 4 जुलाई 1872 को सरकार ने फरमान जारी किया कि गैर कानूनी काम करने की किसी को भी इजाजत नहीं है। इसके साथ ही यदि किसान शान्तिपूर्वक अपनी मांगों व शिकयतों को सरकार के सम्मुख रखेगी तो सरकार उन पर विचार करेगी। इस विद्रोह की सबसे बड़ी सफलता यह थी कि 1855 में 'बंगाल प्रजा स्वत्व कानून' पारित किया गया। इस कानून के तहत यह कहा गया कि जो किसान 12 वर्षों से खेती जोतते बोते रहे हैं उन्हें जमीन से बेदखल नहीं किया जा सकता। पावना किसान आन्दोलन जमींदारों के अत्यचारों को ही नहीं बल्कि लगान रूपी शोषण के हथियार पर अंकुश लगाने में सफल हुआ।

1871 में महात्मा गांधी ने बिहार के चम्पारन किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया। यह आन्दोलन मुख्य रूप से नील की खेती करने वाले और उससे जुड़े हुए काश्तकारों और श्रमिकों का था। गांधी जी ने चम्पारन आन्दोलन में बागान मालिक को जिन्हें नीलहे साहब कहते थे, चुनौति दी और किसान समुदाय की आर्थिक स्थिति की खुली रूप में पड़ताल की। गांधी जी और सरदार पटेल ने 1918 में गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों की समस्याओं को लेकर आन्दोलन किया। इस आन्दोलन में ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा। सन् 1920 से 1930 तक कई कृषक आन्दोलन हुए। अवध (उत्तर प्रदेश) बिहार, गुजरात और दक्षिणी भारत आन्दोलन के रणक्षेत्र बन गये।

सन् 1932 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पश्चात् उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तों में किसान आन्दोलन ने गति पकड़ी। आन्दोलन के जरिये किसानों ने बड़े-बड़े सम्मेलनों का प्रबन्ध किया गया। इन सम्मेलनों में किसानों ने उत्साह से भाग लिया। किसानों के उत्साह और चेतना देख कर अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना की गई। इसका प्रथम अधिवेशन 1936 में बिहार में हुआ। इस सम्मेलन में विशेष तौर पर कांग्रेसी और समाजवादी नेता राम मनोहर लोहिया ने खुल कर भाग लिया। उत्तर प्रदेश में किसान सभाओं के संगठन में आचार्य नरेन्द्र देव का अत्यधिक महत्व है। समाजवादी चिन्तक होने के नाते वे शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न और सामन्तवादी व्यवस्था के विरुद्ध थे।

वास्तव में 1926 के बाद ही किसान सभा स्थापित होने लगी थी। 20वीं सदी के चौथे दशक के मध्य में समाजवादी विचारों की लहर चल रही थी।

ब्रिटिश काल में एक और महत्वपूर्ण आन्दोलन हुआ जो तिभागा आन्दोलन के नाम जाना जाता है। यह आन्दोलन 1946-47 में हुआ। धनग्रहे के अनुसार— "यह आन्दोलन बटाइदारों का था जो फसल का दो तिहाई हिस्सा अपने पास रखना चाहते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद किसान आन्दोलन का रूख बदल गया। किसानों की मांगों के अतिरिक्त अब इसमें राजनीति भी आ गयी।

इसमें तेलंगाना आन्दोलन 1948-52 में हैदराबाद राज्य में हुआ जो वर्तमान आन्ध्र प्रदेश का एक भाग है। यह आन्दोलन जागीरी-व्यवस्था के विरुद्ध था। इस युग में हुए आन्दोलन में नक्सलवाड़ी आन्दोलन मुख्य है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद पश्चिमी बंगाल के बाटेदार, छोटे और सीमान्त कृषकों की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गयी। बिचौलियों प्रथा के उन्मूलन के बाद संवैधानिक संरक्षण के अभाव में बटाइदारों की स्थिति हो गयी। ऐसी अवस्था में जब पश्चिमी बंगाल में युनाइटेड फ्रन्ट सरकार की स्थापना हुई तब वहाँ नक्सलवादी आन्दोलन शुरू हुआ।

25 मई 1967 सी.पी.आई. (मार्क्सवादी) की वैचारिक धारा से अलग होकर चारू मजूमदार के नेतृत्व में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलवाड़ी गांव में नक्सलवाद का जन्म हुआ। आदिवासी युवाओं द्वारा स्थानीय जमींदारों के जुल्म के खिलाफ हथियार बन्द संघर्ष शुरू हुआ। इसका एक ही लक्ष्य था — हिंसा के जरिए सत्ता परिवर्तन और समतामूलक समाज की स्थापना।

माओवादी विचारधारा से प्रेरणा लेने वाले नक्सलवाड़ी इस पार्टी के गठन के दो साल बाद तक बहुत चर्चा में रहे। यह स्थिति जून 1971 तक चली। नक्सलवाड़ी से शुरू यह आन्दोलन दूर-दूर तक फैल गया। इस आन्दोलन की खास बात थी वर्ग-शत्रुओं का सफाया। इसे उच्चतर के वर्ग संघर्ष और छापामार युद्ध की शुरुआत माना गया। इस आन्दोलन के नेता चारू मजूमदार का अनुमान था कि "भारत का हर कोना ज्वालमुखी बन चुका है। यह फूटने वाला ही था और भारत में बहुत ज्यादा उथल-पुथल की सम्भावना थी।" 1970 के मध्य और 1971 के बीच नक्सलवाड़ी हिंसा अपने चरम पर थी।

भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने माना है कि 9 राज्यों के 16 जिलों में नक्सलवादी फैला है। आंध्र प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल गृह मंत्रालय ने यह भी स्वीकार किया है कि पीपुल्स वार और एम.सी.सी.आई अपना प्रभाव तमिलनाडु कर्नाटक और केरल में

भी फैलाने की कोशिश कर रहे हैं। इस आन्दोलन को भरपूर प्रोत्साहन तब मिला जब इसके दोनों घटकों, पीपुल्स वार और माओइस्ट कम्युनिस्ट सेन्ट आफ इण्डिया ने 21 मार्च 2004 को आपस में मिलाप करने का फैसला किया। नक्सलवादी गुटों की अन्य उग्रवादी संगठनों के साठ-गांठ से यह समस्या और जटिल बन गई है। ऐसे संकेत हैं कि पीडब्ल्यूडी कार्यकर्ताओं को एल.टी.टी.ई. के कार्यकर्ताओं ने हथियार चलाने और देसी बमों के इस्तेमाल का प्रशिक्षण दिया है। उनकी नागालैण्ड के नेशनल सोशलिस्ट कौंसिल आफ नागालैण्ड (आई.एम) के साथ भी समझ बनी है और दोनों एक दूसरे का समर्थन करना शुरू किया है।

हीरा लाल शुक्ल नक्सलवाद की आलोचना करते हुए कहते हैं— “वर्ष 1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलवादी से सशस्त्र जन आन्दोलन के द्वारा जिस नक्सल पंथ को कामरेड चारु मजूमदार आदि ने जन्म दिया, वह आज न सिर्फ अपने उद्देश्यों से भटक कर रह गया है बल्कि आंतकवाद के रास्ते पर चल रहा है। इससे न तो किसान, मजदूर की भलाई हो रही है और न ही देश का हित हो रहा है। यह सही है कि जनसमस्या को लेकर जनसंगठित आन्दोलन के जरिए ही देश की दशा को सुधार कर सही दिशा दी जा सकती है। किन्तु हिंसा के सहारे चलने वाले आन्दोलन में भटकाव के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि कार्पोरेट जगत के लोग अर्थात् देशी-विदेशी कम्पनियां सरकार से समझौता करके जल, जंगल, जमीन पर काबिज हो रहे हैं जिससे आदिवासियों की भूमि व संस्कृति में हस्तक्षेप हो रहा है और असंतोष को बढ़ावा मिल रहा है यही स्थिति भारतीय किसानों की भी रही है जिससे कृषक विद्रोह को बढ़ावा मिला और मिल रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि आज भी इस आन्दोलन के लिए सरकार की नीतियां ज्यादा उत्तरदायी हैं जो शिक्षित बेरोजगार युवकों, किसानों, आदिवासियों आदि को विद्रोह के लिए प्रेरित कर रही हैं। निकट भविष्य में इसके प्रति कोई आशावादी दृष्टिकोण भी नहीं विकसित होता दिखायी दे रहा है। राजनैतिक स्वतंत्रता का अर्थ केवल कुछ ही लोगों तक सीमित रह गया। आर्थिक विकास की तेजगति नीचले तबके को अपने स्तर को सुधार पाने में कोई सहयोग नहीं कर पा रही है। ऐसे में इन समस्याओं के प्रति भारतीय नीति के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।

सन्दर्भ :

1. वी०एन० सिंह व जनमेजय सिंह : भारत में सामाजिक आन्दोलन, पृ० 87
2. शेखर बंदोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, पृ० 175-176
3. एस०एल० दोषी एवं पी०सी० जैन : भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, पृ० 253
4. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृ० 15
5. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृ० 15-16
6. शेखर बंदोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, पृ० 180
7. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृ० 285
8. शेखर बंदोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, पृ० 180-181
9. शेखर बंदोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, पृ० 77
10. लेसाई खण्ड 162, खण्ड 802, प्रमोद सेन गुप्त नील विद्रोह, पृ० 65
11. वी०एन० सिंह व जनमेजय सिंह : भारत में सामाजिक आन्दोलन, पृ० 106-108
12. आचार्य नरेन्द्र देव, मुकुट बिहारी लाल, पृ० 242-243
13. एस०एल० दोषी एवं पी०सी० जैन : भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, पृ० 256
14. हस्तक्षेप राष्ट्रीय सहारा, 13 अक्टूबर, 2009
15. योजना अंक-11, फरवरी 2007, पृ० 12-15
16. हीरालाल शुक्ल, आदिवासी अस्मिता और विकास, पृ० 334